

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 3: भगवान् ऋषभदेव का अवतरण

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



धर्मनिष्ठ राजा नाभि के यज्ञ में यज्ञपुरुष भगवान् अपना परम मनोहर स्वरूप प्रकट करते हैं — स्वर्णिम, चतुर्भुज, शंख, चक्र, कमल और गदा धारण किए — और ऋत्विज् उन्हें ऐसे ग्रहण करते हैं जैसे निर्धन जन अचानक कोई निधि पा लें।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में हमने राजा आग्नीध्र की वंश-परम्परा का अनुसरण उनके ज्येष्ठ पुत्र नाभि तक किया, जिन्होंने कुलीन मेरुदेवी से विवाह किया। पंचम स्कन्ध का यह तृतीय अध्याय अब समस्त स्कन्ध के सबसे कोमल और उदात्त प्रसंगों में से एक को कहता है: किस प्रकार सन्तानहीन राजा नाभि

ने, योग्य पुत्र की कामना से, शुद्ध और एकाग्र हृदय से भगवान् विष्णु की आराधना की — और किस प्रकार भगवान् ने, अपने भक्त के प्रति स्नेह से द्रवित होकर, यज्ञ में स्वयं प्रकट होकर ऋत्विजों के प्रेमपूर्ण स्तवन को स्वीकार किया, और फिर एक विस्मयकारी वचन दिया: अपने समान किसी को कहीं न पाकर, वे स्वयं ही नाभि के पुत्र-रूप में अवतरित होंगे। यह भगवान् ऋषभदेव के — वैराग्य के उस महान् उपदेष्टा के, जिनकी कथा आगे के अध्यायों में खुलेगी — अवतरण की पावन भूमिका है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 3 (तृतीय अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् ऋषभदेव का अवतरण
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह समस्त संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित शौनक आदि ऋषियों की सभा को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: राजा नाभि का यज्ञ-मण्डप, जहाँ प्रवर्ग्य कर्म सम्पन्न हो रहे हैं, और रानी मेरुदेवी के अन्तःपुर
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार राजा नाभि और रानी मेरुदेवी ने पुत्र की कामना से भगवान् विष्णु की आराधना की; किस प्रकार भगवान् ने अपना मनोहर स्वरूप प्रकट किया और ऋत्विजों ने उनका स्तवन किया; किस प्रकार अपने समान किसी को न पाकर उन्होंने नाभि के द्वारा अवतरित होने का वचन दिया; और किस प्रकार वे मेरुदेवी के गर्भ में भगवान् ऋषभदेव के रूप में प्रकट हुए
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 1-20
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

पंचम स्कन्ध का द्वितीय अध्याय राजा आग्नीध्र के देहावसान और उनके नौ पुत्रों के मेरु की नौ कन्याओं से विवाह के साथ समाप्त हुआ। इन विवाहों में ज्येष्ठ पुत्र नाभि ने मेरुदेवी से विवाह किया। इसी राजदम्पति से यह अध्याय आरम्भ होता है। नाभि को अपने पिता का राज्य और उनकी धर्मनिष्ठा तो प्राप्त हुई, किन्तु वंश को आगे बढ़ाने वाला पुत्र अभी नहीं। और इसीलिए, अपने पूर्वजों के समान, वे आराधना की ओर मुड़ते हैं — किन्तु यहाँ यह आराधना उनकी माँगी हुई किसी भी वस्तु से कहीं बड़ी कृपा को नीचे उतार लाती है।

पुत्र के लिए एक राजा की प्रार्थना

राजा नाभि सन्तान की कामना रखते थे। उनकी रानी मेरुदेवी अब तक निःसन्तान थीं, और दोनों ने मिलकर एक ही कामना पर हृदय लगाया: अपनी पावन वंश-परम्परा को आगे बढ़ाने वाला एक योग्य उत्तराधिकारी। इसी उद्देश्य से नाभि ने समस्त यज्ञों के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु की आराधना की, अपने मन को पूर्णतया एकाग्र और हृदय को विक्षेप-रहित रखकर उनकी उपासना की।

śrī-śuka uvāca nābhir apatya-kāmo 'prajayā merudevyā bhagavantaṁ yajña-puruṣam avahitātmāyajata

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: सन्तान की कामना से राजा नाभि ने, अपनी निःसन्तान रानी मेरुदेवी के साथ, पूर्णतया एकाग्र मन से समस्त यज्ञों के अधिष्ठाता, परम पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना की। (स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 1)

शास्त्र हमें स्मरण कराता है कि जिनकी इस प्रकार आराधना की जाती है वे भगवान् तब भी दुर्लभ हैं जब यज्ञ की समस्त सामग्री — हवि, उचित देश और काल, पवित्र मन्त्र, योग्य ऋत्विज् और उनकी दक्षिणा — निर्दोष रूप से जुटाई गई हो। वे अनुष्ठान की मशीनरी से विवश नहीं होते। और फिर भी, क्योंकि प्रवर्ग्य कर्मों के चलते नाभि ने श्रद्धा और शुद्ध हृदय से उनकी आराधना की, भगवान् ने — मात्र अपने भक्तों के प्रति स्नेह से, और अपने सेवक की कामना पूर्ण करने की उत्कण्ठा से — अपना वही परम मनोहर, आत्म-निर्भर स्वरूप प्रकट करना चुना, जो मन और नेत्रों को आनन्दित करने वाला है।



योग्य पुत्र की कामना से राजा नाभि और उनकी रानी मेरुदेवी यज्ञ के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु की एकाग्र और श्रद्धापूर्ण हृदय से आराधना करते हैं (श्लोक 1-2)।

भगवान् अपना मनोहर स्वरूप प्रकट करते हैं

तब यज्ञभूमि में भगवान् शुद्ध तेज के स्वरूप में प्रकट हुए। वे दो जोड़ी भुजाओं और तप्त स्वर्ण के समान देह के साथ प्रकट हुए, पीत रेशमी वस्त्र धारण किए, वक्षःस्थल पर पावन श्रीवत्स-चिह्न लिए। अपने हाथों में उन्होंने शंख, कमल, वनपुष्पों की माला, चक्र, कौस्तुभ मणि और गदा धारण की थी; वे एक तेजस्वी मुकुट, दीप्तिमान कुण्डलों, कंगनों, रत्नजटित करधनी, हार, बाजूबन्दों और नूपुरों से विभूषित थे। सौन्दर्य की इस निधि को देखकर ऋत्विज्, यज्ञ के सदस्य और यज्ञ के यजमान अपने शीश नत करके उनकी सेवा में जुट गए — उन निर्धन जनों के समान जो बिना किसी पूर्व-सूचना के अपार धन पा लेते हैं।

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं ... ऋत्विक् सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य
सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ ३ ॥

atha ha tam āviṣkṛta-bhuja-yugala-dvayaṁ hiraṇmayam puruṣa-viśeṣaṁ ... ṛtvik-sadasya-grha-patayo 'dhanā ivottama-dhanam upalabhya sabahu-mānam arhaṇenāvanata-śīrṣāṇa upatasthuḥ

अर्थ: तब भगवान् ने एक दिव्य, स्वर्णिम स्वरूप प्रकट किया — दो जोड़ी भुजाओं से युक्त, पीत रेशमी वस्त्र धारण किए, वक्ष पर श्रीवत्स-चिह्न लिए, शंख, कमल, वनमाला, चक्र, कौस्तुभ मणि, गदा आदि धारण किए, और तेजस्वी मुकुट, कुण्डलों, कंगनों, करधनी, हार, बाजूबंदों तथा नूपुरों से विभूषित। ऋत्विज्, सभासद और यज्ञ के यजमान, अपार धन पाने वाले निर्धन जनों के समान, शीश नत करके श्रद्धापूर्ण उपहारों से उनकी उपासना करने लगे। (स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 3)

ऋत्विजों का स्तवन

कृपा से अभिभूत होकर ऋत्विजों ने स्तुति-गान आरम्भ किया, जो छन्द में नहीं, अपितु प्रवाहमय गद्य में गुँथा था। उनकी प्रार्थना भागवत की सबसे मनोहर विनम्रता-स्वीकृतियों में से एक है। वे यह मानकर आरम्भ करते हैं कि वे उनके स्तवन के कार्य के सर्वथा अयोग्य हैं: कोई भी सांसारिक व्यक्ति, जिसकी बुद्धि माया के गुणों के परस्पर व्यतिकर में उलझी है, इस सृष्ट जगत् के नाम, वर्ण और रूपों के द्वारा उन परम भगवान् के वास्तविक स्वरूप का निर्धारण नहीं कर सकता — जो प्रकृति और पुरुष दोनों से परे हैं। अधिक-से-अधिक जो कोई कर सकता है वह है उनके मंगलमय गुणों के एक अंश का वर्णन, और वह लघु वर्णन भी समस्त प्राणियों के पापों को धो डालता है।

तब वह श्लोक आता है जिसने युगों से भक्तों को सान्त्वना दी है — यह आश्वासन कि भगवान् वैभव से नहीं, अपितु प्रेम से जीते जाते हैं:

परिजानानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥ ६ ॥

parijanānurāga-viracita-śabala-saṁśabda-salila-sita-kisalaya-tulasikā-dūrvāṅkurair api sambhṛtayā saparyayā kila parama parituṣyasi

अर्थ: हे परम पुरुष, आप अपने प्रेमी सेवकों द्वारा गद्गद वाणी से अर्पित उस सरल पूजा से भी अवश्य सन्तुष्ट हो जाते हैं — जिसमें केवल शुद्ध जल, ताजे निर्मल पत्ते, तुलसी और दूर्वा के अंकुर भक्तिपूर्वक जुटाए गए हों। (स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 6)

ऋत्विज् आगे यह स्वीकार करते हैं कि यह विशाल यज्ञ उनमें कुछ भी नहीं जोड़ सकता, क्योंकि वे स्वयं मनुष्य-जीवन के चारों प्रयोजनों के मूर्त स्वरूप हैं और जो कुछ भी अर्पित किया जाए वह पहले से ही, निरन्तर, उन्हीं का है। ऐसी व्यवस्थाएँ केवल उपासक के हित के लिए हैं, भगवान् के लिए नहीं — यही सत्य वे आगे बढ़ते हुए कहते हैं कि उनका यह प्राकट्य भी उनकी अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं है। वे कहते हैं, वे केवल उस करुणामय गुरु के समान आए हैं जो अज्ञानियों के पास स्वयं चला जाता है — कुछ पाने के लिए नहीं, अपितु इसलिए कि जिनकी दृष्टि उनके वास्तविक ऐश्वर्य को देखने में असमर्थ है, वे भी उन्हें देख सकें और उसी दर्शन मात्र से धन्य हो सकें। यहाँ तक कि वे महान् मुनि भी, जिन्होंने ज्ञान की अग्नि में सांसारिक कामना का प्रत्येक अंश भस्म कर दिया है और जिनका आनन्द केवल उनके नामों के कीर्तन

में है, उनके साक्षात् दर्शन कदाचित् ही पाते हैं; तब साधारण ऋत्विजों को नाभि के यज्ञ में मिली यह कृपा कितनी असाधारण है (श्लोक 7-11)। यही करुणा आगे चलकर तब भी प्रकट होगी जब भगवान् ऋषभदेव के रूप में अवतरित होंगे — संसार के तपस्वियों को उनके उदाहरण की आवश्यकता है इसलिए नहीं, अपितु इसलिए कि उनका यह उदाहरण स्वयं संसार के कल्याण हेतु दिया गया एक निःस्वार्थ उपहार है।



ऋत्विज्, शीश नत किए, एक हृदयस्पर्शी स्तवन से भगवान् की स्तुति करते हैं, यह स्वीकार करते हुए कि वे यज्ञ के वैभव से नहीं, अपितु प्रेम से जीते जाते हैं (श्लोक 4-15)।

उनके स्तवन के हृदय में धन या स्वर्ग के लिए नहीं, अपितु स्मरण के लिए एक प्रार्थना है — कि भगवान् के पवित्र नाम उनके होंठों पर उन्हीं क्षणों में स्वतः उठ आएँ जब वे उन्हें पुकारने में सबसे अधिक असमर्थ हों:

अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥ १२ ॥

atha kathañcit skhalana-kṣut-patana-jṛmbhaṇa-duravasthānādiṣu vivaśānām naḥ smaraṇāya jvara-maraṇa-daśāyām api sakala-kaśmala-nirasanāni tava guṇa-kṛta-nāmadheyāni vacana-gocarāṇi bhavantu

अर्थ: आपके गुणों से उत्पन्न, पाप-नाशक आपके नाम स्वयं ही हमारी जिह्वा पर आ जाएँ — तब भी जब हम विवश होकर लड़खड़ाएँ, भूखे हों, गिरें, जँभाई लें अथवा दुरवस्था में पड़े हों, और ज्वर तथा मृत्यु की उस वेदना में भी — ताकि हम आपका स्मरण कर सकें। (स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 12)

अन्ततः, निष्कपट स्पष्टता के साथ, ऋत्विज् यज्ञ के कारण की ओर मुड़ते हैं। यह राजर्षि नाभि, पुत्र की कामना से, उन भगवान् की शरण में आए हैं जो स्वर्ग और मोक्ष तक प्रदान कर सकते हैं — अपने समान एक पुत्र की आशा में, जैसे कोई निर्धन देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर के पास मात्र भूसी की मुट्ठी की आशा में जाए। महापुरुषों के चरणों की शरण लिए बिना, वे स्वीकार करते हैं, कोई भी इस अजेय माया से बच नहीं

सकता — क्योंकि इस पृथ्वी पर ऐसा कौन है जो विषतुल्य सांसारिक भोग की तरंगों में बह न गया हो, जिसकी गति का पता कोई नहीं लगा सकता? और इसलिए वे भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी पूर्ण समदृष्टि से उन अज्ञानी जनों के अपराध की उपेक्षा कर दें, जो सन्तान को सर्वोपरि मानते हैं, और जिन्होंने इतने लघु प्रयोजन के लिए स्वयं परम देव को आमन्त्रित किया है।

भगवान् का कृपापूर्ण उत्तर

जब इस प्रकार गद्य-स्तवन से भगवान् की स्तुति हो चुकी, और ऋत्विज् उनके चरणों में नत खड़े थे, तब उन्होंने कृपापूर्वक उत्तर दिया। उनका उत्तर एक साथ एक कोमल संशोधन भी है और एक असाधारण वचन भी।

श्रीभगवानुवाच

अहो बताहमृषयो भवद्विरवितथगीर्भवर्मसुलभमभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यदथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥ १७ ॥

śrī-bhagavān uvāca aho batāham ṛṣayo bhavadbhir avitatha-gīrbhir varam asulabham abhiyācito yad amuṣyātmajo mayā sadṛśo bhūyād iti mamāham evābhirūpaḥ kaivalyād athāpi brahma-vādo na mṛṣā bhavitum arhati mamaiva hi mukhaṁ yad dvija-deva-kulam

अर्थ: भगवान् ने कहा: हे ऋषियो, जिनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती, आपने मुझसे एक दुर्लभ और कठिन वर माँगा है — कि इस राजर्षि को मेरे समान एक पुत्र प्राप्त हो। किन्तु क्योंकि मैं अद्वितीय और अनुपम हूँ, मैं स्वयं ही अपना सदृश हूँ; मेरे समान कोई नहीं। फिर भी ब्राह्मणों का वचन कभी मिथ्या नहीं होना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण-समुदाय मेरा ही मुख है। (स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 17)

क्योंकि अपने समान कोई कहीं न मिल सका, और क्योंकि ब्राह्मणों के वचन का सम्मान होना ही चाहिए, भगवान् ने इस कठिनाई को एकमात्र सम्भव रीति से हल किया: वे स्वयं आएँगे। वे आग्नीध्र के पुत्र नाभि के द्वारा, अपने ही एक अंश को प्रकट करते हुए, पृथ्वी पर अवतरित होंगे।



भगवान् ऋषिजों को कृपापूर्वक उत्तर देते हैं: अपने समान किसी को न पाकर, वे राजा नाभि के द्वारा, अपने ही एक अंश-रूप में, स्वयं अवतरित होने का वचन देते हैं (श्लोक 16-18)।

भगवान् ऋषभदेव का अवतरण

राजदम्पति की पत्नी मेरुदेवी के सुनते हुए ये वचन कहकर भगवान् दृष्टि से अन्तर्धान हो गए। तब, उसी यज्ञ में महर्षियों द्वारा प्रसन्न किए गए, और अपने भक्त राजा नाभि का प्रिय करने की इच्छा से, भगवान् रानी मेरुदेवी के अन्तःपुर में शुद्ध सत्त्व के स्वरूप में अवतरित हुए। वे केवल एक पिता की उत्कण्ठा पूर्ण करने ही नहीं आए, अपितु अपने ही उदाहरण से समस्त संसार को शिक्षा देने आए — उन पावन व्रतों को प्रदर्शित करने, जिनका पालन वे तपस्वी मुनि करते हैं जो केवल खुले आकाश को ही वस्त्र मानते हैं, जो कठोर तप का जीवन जीते हैं, और जो आजीवन ब्रह्मचर्य के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं।

बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवावततार ॥ २० ॥

barhiṣi tasminn eva viṣṇudatta bhagavān paramarṣibhiḥ prasādito nābheḥ priya-cikīrṣayā tad-avarodhāyane merudevyāṁ dharmān darśayitu-kāmo vāta-raśanānām śramaṇānām ṛṣīṇām ūrdhva-manthinām śuklayā tanuvāvatatāra

अर्थ: हे विष्णुदत्त (परीक्षित), महान् ऋषियों की स्तुति से संतुष्ट भगवान् ने राजा नाभि के कल्याण की कामना से मेरुदेवी की कोख में शुद्ध सत्त्व से बने अपने दिव्य स्वरूप को धारण किया, और साथ ही मनुष्य-समाज को अपने ही आचरण से उन पावन व्रतों की शिक्षा देने की इच्छा की, जिनका पालन वायु-वस्त्रधारी, तपस्वी और आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रती मुनिजन करते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 3, श्लोक 20)

इस प्रकार यह पावन भूमिका पूर्ण होती है। मेरुदेवी के गर्भ में जो शिशु स्थित हुआ वह भगवान् ऋषभदेव हैं — जो प्रथम स्कन्ध में गिनाई गई भगवान् की अभिव्यक्तियों में से एक हैं — जिनकी सार्वभौमता, शिक्षाएँ और वैराग्य पंचम स्कन्ध आगे के अध्यायों में उद्धाटित करेगा।



महर्षियों द्वारा प्रसन्न किए गए भगवान् रानी मेरुदेवी के अन्तःपुर में शुद्ध सत्त्व के स्वरूप में अवतरित होते हैं, ताकि भगवान् ऋषभदेव के रूप में प्रकट हों (श्लोक 19-20)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

भगवान् प्रेम से आकर्षित होते हैं, अनुष्ठान से विवश नहीं। यद्यपि वे “तब भी दुर्लभ हैं जब यज्ञ की समस्त सामग्री निर्दोष रूप से जुटाई गई हो,” भगवान् नाभि के समक्ष अपने आप को प्रकट करते हैं क्योंकि राजा की श्रद्धा और शुद्ध हृदय है। अध्याय सिखाता है कि पूजा की कोई मशीनरी उन्हें विवश नहीं कर सकती; वह सच्चा स्नेह है, जो केवल जल, पत्तों और तुलसी से भी अर्पित हो, जो उन्हें जीत लेता है।

विनम्रता ही प्रार्थना की सच्ची भाषा है। ऋत्विज्, यद्यपि सबसे बड़े यज्ञ का संचालन करने योग्य विद्वान् हैं, स्वीकार करते हैं कि वे भगवान् को उतना ही माप सकते हैं जितना असमर्थ जन अनन्त को पकड़ सकें। उनका स्तवन दिखाता है कि सर्वोच्च श्रद्धा उनके समक्ष अपनी लघुता स्वीकार करने से आरम्भ होती है — और यह कि हमारी श्रेष्ठतम स्तुति भी उनकी महिमा के एक अंश को ही छूती है।

सबसे बढ़कर स्मरण माँगो। अध्याय की सबसे सुन्दर प्रार्थना पुत्र, स्वर्ग या धन के लिए नहीं है, अपितु यह कि भगवान् के पवित्र नाम असमर्थता में, रोग में, और मृत्यु की घड़ी में भी जिह्वा पर उठ आएँ। स्मरण की कृपा माँगना उस एकमात्र वरदान को माँगना है जो आत्मा को प्रत्येक संकट से सकुशल पार ले जाता है।

ब्राह्मणों का वचन मिथ्या नहीं होना चाहिए। जब ऋषि भगवान् के समान एक पुत्र माँगते हैं — एक ऐसा वर जो, कठोरता से देखें तो, असम्भव है, क्योंकि उनका कोई समान नहीं — तब भी वे स्वयं आकर उनके वचन का सम्मान करते हैं। अध्याय एक साथ यह प्रकट करता है कि भगवान् अपने भक्तों की वाणी को कितनी पवित्रता प्रदान करते हैं, और उनकी कृपा की सीमाहीन सीमा भी।

भगवान् उदाहरण से शिक्षा देने अवतरित होते हैं। ऋषभदेव केवल एक प्रार्थना का उत्तर देने ही नहीं आते, अपितु अपने ही जीवन में संसार की शिक्षा के लिए तप और वैराग्य का मार्ग प्रदर्शित करने आते हैं। भगवान् का अवतार सदैव, अपने मर्म में, एक करुणापूर्ण शिक्षण का कार्य है।

एक भाक्तेपूण चिन्तन

इस अध्याय के उद्घाटित होने की रीति में कुछ गहराई से हृदय को स्पर्श करने वाला है। एक निःसन्तान राजा केवल एक पुत्र माँगता है, और समस्त यज्ञों के भगवान् — जिनका वर्णन बुद्धिमत्तम ऋषि भी नहीं कर सकते — उसके समक्ष स्वयं प्रकट होते हैं और स्वयं ही वह पुत्र बनने का वचन देते हैं। नाभि जो माँगता है और जो पाता है, उनके बीच की दूरी ही दिव्य कृपा का माप है: हम भगवान् के पास अपनी लघु, मानवीय कामनाओं के साथ आते हैं, और वे अपनी ही उपस्थिति के उपहार से उत्तर देते हैं। ऋत्विज् यह समझते थे। इसीलिए, प्रत्येक सम्भव वरदान के दाता के समक्ष खड़े होकर भी, उन्होंने सबसे बढ़कर स्मरण की प्रार्थना की — यह जानते हुए कि उनका नाम जिह्वा पर धारण करना स्वर्ग के प्रत्येक राज्य से अधिक मूल्यवान् है। उनकी प्रार्थना हमारी बन सकती है। अपने लड़खड़ाने में, अपने ज्वरों और अपनी विस्मृति में, हम भी माँग सकते हैं कि उनका नाम स्वयं ही हमारे भीतर उठ आए। क्योंकि जो भगवान् एक भक्त के प्रेम से मेरुदेवी के गर्भ में आए, वही भगवान् प्रत्येक सच्चे हृदय के निकट आते हैं, आज भी केवल हमारा स्नेह माँगते हुए, और बदले में, हमारी माँगने की क्षमता से कहीं अधिक देते हुए।

एक दैनिक भक्ति-साधना

ऋत्विजों की उस सबसे कोमल प्रार्थना का अनुसरण करते हुए, स्मरण की साधना को अपनाइए। भगवान् का कोई एक पवित्र नाम चुनिए — “वासुदेव,” “विष्णु,” “माधव” — और उसे दिन भर शान्ति से अपने साथ रहने दीजिए: जागने पर, भोजन से पूर्व, कठिनाई के क्षणों में, और सोते समय। किसी महान् अवसर की प्रतीक्षा मत कीजिए। जैसे ऋषियों ने प्रार्थना की कि भगवान् का नाम असमर्थता में भी उन्हें प्राप्त हो, वैसे ही हृदय को अभी, छोटे और सामान्य क्षणों में प्रशिक्षित कीजिए, ताकि वह नाम एक परिचित मित्र बन जाए — ऐसा जो आपको तब न छोड़े जब आपको उसकी सबसे अधिक आवश्यकता हो।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का तृतीय अध्याय भगवान् ऋषभदेव के अवतरण की पावन भूमिका है। निःसन्तान राजा नाभि, अपनी रानी मेरुदेवी के साथ, शुद्ध और एकाग्र हृदय से भगवान् विष्णु की आराधना करते हैं; और भगवान्, स्नेह से द्रवित होकर, यज्ञ में अपने मनोहर स्वर्णिम स्वरूप में प्रकट होते हैं। ऋत्विज् उनका गहन विनम्रता के स्तवन से गुणगान करते हैं, यह स्वीकार करते हुए कि वे अनुष्ठान से नहीं, अपितु प्रेम से जीते जाते हैं, और प्रार्थना करते हुए कि उनके पवित्र नाम उनकी सबसे असमर्थ घड़ियों में भी उनकी जिह्वा पर जीवित रहें। जब वे भगवान् के समान एक पुत्र माँगते हैं, तब वे उत्तर देते हैं कि वे स्वयं ही अपने सदृश हैं — और, ब्राह्मणों के वचन को मिथ्या न होने देने के लिए, वे स्वयं अवतरित होने का संकल्प करते हैं। यज्ञ से अन्तर्धान होकर, वे मेरुदेवी के गर्भ में शुद्ध सत्त्व के स्वरूप में प्रकट होते हैं, एक भक्त की उत्कण्ठा पूर्ण करने और संसार को वैराग्य का मार्ग सिखाने आते हैं। जैसे-जैसे पंचम स्कन्ध अब भगवान् ऋषभदेव के जीवन और सार्वभौमता की ओर मुड़ता है, हम इस अध्याय की चिरन्तन शिक्षा को आगे ले चलते हैं: कि भगवान् उन्हें अपने आप को दे देते हैं जो उनसे प्रेम करते हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), पंचम स्कन्ध, तृतीय अध्याय, “The descent of Lord Rsabha,” पृष्ठ 448–451।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-3-the-descent-of-lord-rsabhadeva-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट